पुस्तक समीक्षा

बच्चे असफल कैसे होते हैं

लेखक — जॉन हॉल्ट
अनुवादक — पूर्वा याज्ञनिक कुशवाहा
प्रकाशक — एकलव्य, शिवाजी नगर, भोपाल
प्रकाशन वर्ष — 1993
पृष्ठ संख्या — 283
मूल्य — ₹150.00

कलम के धनी योद्धाओं (संघर्ष करने वाले शिक्षकों) के कटु अनुभवों से उपजा ज्ञान हर किसी के भाग्य में नहीं होता है और जिसे वह ज्ञान मिलता है, वह जीवन की सभी विपरीत बहने वाली धाराओं में भी पार पाने में सफ़ल होता है। अर्जुन सभी बन सकते हैं, लेकिन वह द्रौणाचार्य कहाँ से लाएँ। सच्चा शिक्षक तो सारथी भी बनकर जीवन के कुरुक्षेत्र में ज्ञान ही देगा, लेकिन आज के युग में कृष्ण जैसा सारथी मिलना ही मुश्किल है, जो रणक्षेत्र से पलायन को रोकने के लिए गीता का पाठ पढ़ाकर हमारे ज्ञान चक्षु खोलने में हमारी मदद करे। विद्यालयों से पलायन भी एक ऐसी ही समस्या है जिससे शायद ही कोई देश अछूता रहा हो। यह ऐसी असफ़लता है जो बहुत से बालकों के हिस्से में आती है, जो शायद हमारे समय की सबसे बड़ी विडंबना है। आज की इन परिस्थितियों में विद्यालय विद्यार्थियों के लिए एक रोचक स्थान न होकर एक उबाऊ एवं असुरक्षित स्थान हो गया है, जहाँ से विद्यार्थी या बच्चा तुरंत भागकर घर जाना चाहता है। ऐसा अकसर देखने में भी आया है कि बच्चे स्कूल तो धीरे-धीरे जाते हैं, किंतु विद्यालय से छुट्टी होने के बाद तुरंत घर की तरफ़ दौड़ कर भागते हैं जो हमारी शिक्षा व्यवस्था पर एक गहरा प्रश्न चिह्न लगाता है? साथ ही साथ हमारे विद्यालयों की असफ़लता को भी उजागर करता है।

जॉन होल्ट द्वारा सन् 1964 में प्रकाशित *'बच्चे असफ़ल कैसे होते हैं'* (*How Children Fail*) से शिक्षा में सुधार और शिक्षा की गुणवत्ता को लेकर शिक्षक और विद्यालय पर किए गए प्रहार से एक अंतर्राष्ट्रीय बहस शुरू हुई। द *न्यूयॉर्क रिव्यू ऑफ़ बुक्स* ने जॉन होल्ट को पिआज़े की संज्ञा दी है। *लाइफ़ पत्रिका* ने तर्क की विनम्र आवाज़ कहकर संबोधित किया है। इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद

पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा ने और प्रकाशन एकलव्य ने किया है। सत्य तो यह है कि यह पुस्तक शिक्षकों की असफ़लता को उजागर करती है, क्योंकि असफ़ल होना तो छात्र के लिए मार्ग का चयन करने हेतु एक विकल्प मात्र है। बच्चे अपने अंदर छिपे हुए ज्ञान का अंश मात्र ही विद्यालय में विकसित कर पाते हैं, जबकि यही वह समय होता है, जब बालक अपने सामर्थ्य का भरपूर उपयोग कर अपने सभी आयामों का विकास करने के लिए तैयार रहते हैं। एक छोटी-सी सुई से लेकर अनंत आकाश में उड़ने की इच्छा उनके मन में पल रही होती है। शिक्षक और विद्यालय को चाहिए कि बालक को सीखने के लिए स्वतंत्र छोड़ दें ताकि वह नीरस, निरर्थक, भ्रमित, अर्थहीन और बंद वातावरण से मुक्त होकर कुछ स्वयं का अस्तित्व निर्धारित कर सके। होल्ट ने बच्चों को खेलने, सीखने और बड़े होने की आज़ादी मिलने की पैरवी की है ताकि बच्चे अपनी क्षमताओं के शिखर को छू सकें। इस पुस्तक में होल्ट ने अपने विशेष अनुभवों को साझा करते हुए बच्चों की दुनिया को देखने के नज़रिए, उनके सामाजिक सरोकारों और अपने लिए अधिकार के मुद्दों से निपटने के तरीकों को उजागर किया है। यह पुस्तक भारत के संदर्भ में मौजूदा शैक्षणिक परिस्थितियों को समझने, उनमें परिवर्तन करने का मार्ग प्रशस्त करती है। वर्तमान परिदृश्य में भी ये सारी समस्याएँ बनी हुई हैं। शिक्षक बच्चों को अपने तरीके से पढ़ाना चाहता है, जबकि होना यह चाहिए कि वह बच्चों को उस तरह से पढ़ाएँ, जिस तरह से वो पढ़ना चाहते हैं। बच्चे उन समस्त चीज़ों को जल्दी सीखते हैं, जिनमें उनकी रुचि होती है।

पुस्तक में संकलित चारों भागों में बालकों की व्यूह रचनाओं, उनके चिंतन के तरीकों, उनमें उपस्थित भय, भय से उत्पन्न असफ़लता, उनके ज्ञान ग्रहण करने के तरीकों, उनकी वास्तविक बौद्धिक क्षमताओं, विद्यालय के घटकों और विद्यालय की असफ़लता के कारणों को होल्ट के व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से विश्लेषित किया गया है।

होल्ट ने अपने अनुभवों में पाया कि मेधावी व्यक्ति एक समस्या को सुलझाने में स्वयं को पूरी तरह प्रयत्नशील कर देता है। वह बार-बार गलतियाँ करके अपने साहस को बटोर कर वास्तविकता तक पहुँचने के लिए हर संभव प्रयास करता है। लेखक अपने प्रत्यक्ष अनुभवों से बयाँ करता है कि कुछ बच्चे प्रखर, जिज्ञासु और कुछ निस्तेज होते हैं। प्रखर बालक प्रयोग करने में विश्वास रखते हैं, वहीं निस्तेज बालक एक बार की असफ़लता से निराश होकर बैठ जाते हैं। प्रखर बालक विपरीत परिस्थितियों में भी अपना धैर्य नहीं खोते और पराकाष्ठा तक चुनौती का सामना करने में समर्थ रहते हैं। प्रखर बालक अधूरे ज्ञान और अपूर्ण जानकारी के आधार पर भी आगे बढ़ने, जोखिम उठाने, नए सागरों को पार करने, अंधकार में भी प्रकाश की खोज करने को तैयार रहते हैं, क्योंकि उनको लगता है संपूर्ण सृष्टि तार्किक, विवेकपूर्ण और भरोसेमंद स्थान है। वहीं निस्तेज बालक अपरिचित परिस्थिति से भयभीत होकर निष्क्रिय हो जाता है।

लेखक अपने विचार रखता है कि मानसिक रूप से विकलांग बालकों को छोड़ दें, सामान्य बालकों में ऐसा क्या होता है कि अचानक सीखते-सीखते उनकी क्षमताओं पर विराम-सा लग जाता है। एक शिक्षक ज्ञान देने की प्रक्रिया में नकारात्मकता द्वारा

बालक के विकास को अवरुद्ध कर देने के लिए पूर्ण ज़िम्मेदार है, क्योंकि शिक्षक को वे ही बच्चे अच्छे लगते हैं, जो उनसे भयभीत रहते हैं। उसे अंकों का लालच देकर उसकी जिज्ञासा को जागने का अवसर ही नहीं देते। उदाहरण के तौर पर, स्विट्ज़रलैंड का भौगोलिक ज्ञान वहाँ के लोक-गीत गायन से नहीं आएगा अथवा लिंकन के बारे में जानकारी लकड़ी चीरने संबंधी गणित से कोई समानता नहीं रखती अर्थात् उदाहरण कल्पनाशील होना चाहिए।

लेखक कहता है कि शिक्षक को जब यह पता चलता है कि जो कुछ उसने पढ़ाया है, उसे समझने में बालकों को परेशानी हो रही है तो वह अपना सीना चौड़ा कर लेता है। वास्तव में, यह शिक्षक की ही हार है, क्योंकि बच्चे यहीं से सोचने लगते हैं कि विद्यालय नीरसता और भय का स्थान है और शिक्षक भय को उत्पन्न करने वाला।

लेखक अपने अनुभव वृत्तांत में कहता है कि एक बार वह अपने मनोविज्ञान के शिक्षक मित्रों के शिक्षक महाविद्यालय में उनकी कक्षाओं को संबोधित कर रहा था, तो पाया कि जिस प्रशिक्षणार्थी की तरफ़ लेखक देखता, वही प्रशिक्षणार्थी आँखें चुरा लेता। इस पर लेखक कहता है कि काश! मैं उन नौजवानों और अकुशल मज़दूरों (प्रशिक्षणार्थियों को कहा है) को यह सलाह दे पाता कि जब तुम इस भय पर काबू पा लो और स्वयं से प्रेम करने लग जाओ, तब इस कक्षा में आने के लायक हो। इसलिए व्यक्ति को अधिक-से-अधिक सामाजिक संबंध स्थापित करने की सलाह देता है, क्योंकि जितने अधिक लोगों से मिलाप होगा उतनी ही समस्याओं से उलझकर निखरने और भय रहित होने का अवसर मिलेगा। लेखक ने पुस्तकों पर भी झूठ और विकृत छवि प्रस्तुत करने का आरोप मढ़ा है, क्योंकि पुस्तकें भी पक्षपात और कल्पना के पाश में रची जाने लगी हैं।

लेखक स्वयं एक शिक्षक होते हुए अपने अनुभवों की शृंखला में शिक्षकों पर कटाक्ष करने से नहीं चूका। अपने संस्मरण की चर्चा करते हुए बताता है कि कोई भी शिक्षक सिवाय उसके यह कहते नहीं मिला कि एक शिक्षक को अपनी कक्षा के सभी बच्चों से स्नेह नहीं है, जबकि एक बालक की माता लेखक को बताती है कि उसका बेटा पहले ही दिन कक्षा में बात करने का दंड अध्यापक और अन्य बालकों की हँसी का पात्र बनकर भुगत चुका है अर्थात् विद्यालय मानसिक बलाघात का स्थान भी ले चुके हैं। एक शिक्षक को सत्य बोलने और न कहने के लिए अबोध बालक की तरह साहसी व ईमानदार होने की आवश्यकता है। लेखक को ऐसे कितने ही बच्चे मिले जो अपने शिक्षकों को पसंद नहीं करते थे। यही बात चार्ल्स सिल्बरमैन ने अपनी पुस्तक *क्राइसिस इन द क्लास* और एडा माउरेर ने द *लास्ट रिज़ोर्ट* पत्रिका द्वारा विद्यालयों पर किए गए राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण में लिखी है कि विद्यालय के अधिकांश शिक्षकों का मानसिक संतुलन 15 लाख बच्चों की प्रतिवर्ष औपचारिक पिटाई से तय होता है, जिसमें अनौपचारिक प्रताड़ना को तो कोई स्थान ही नहीं है। शिक्षा के प्रोफ़ेसर आर्थर पर्ल इन प्रताड़नाओं को "बेइज़्ज़ती के रस्मों-रिवाज़" की संज्ञा देते हैं। दूसरी तरफ़ लेखक उन शिक्षकों के प्रति सम्मान भी व्यक्त करता है जो बच्चों से बेहद स्नेह करते हैं, लेकिन उनकी सामाजिकता और विनम्रता के कारण या तो वे स्वयं विद्यालय छोड़ देते हैं या निकाल दिए जाते हैं।

पुस्तक को लिखने का लेखक का क्या मकसद रहा है? इसका आभास पुस्तक को पढ़ने पर आसानी से हो जाता है। कहीं-कहीं वृत्तांत इतना मार्मिक है कि लगता है लेखक कोई काल्पनिक कहानी गढ़ने की कोशिश कर रहा है। लेखक लिखता है कि हर शिक्षक जो बालक को प्रयोगशाला के रूप में देखता है, घातक है। एक बालक को 5000 वर्ष पुराना इतिहास पढ़ाकर उसे कंठस्थ करने हेतु प्रताड़ित करने जैसा है, बजाय इसके कि वह उसे जानकारी समझकर अपने जीवन के आने वाले उतार-चढ़ावों में उसकी प्रासंगिकता समझे। यथार्थ ज्ञान का बोध कराने के बजाय बालक को वह ज्ञान क्यों जो केवल किताबी और कल्पनातीत है। हमें ऐसे लोग तैयार करने चाहिए जो आवश्यकता पड़ने पर ज़रूरतों के लिए स्वयं निर्माण करने लगें। एक पुरानी कहावत है कि घोड़े को पानी के पास तो ले जाया जा सकता है, लेकिन पीने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। लेकिन लेखक का दृष्टिकोण है कि अब घोड़े को पानी के पास ले जाने के बजाय उसे आवश्यकताओं का ज्ञान और उसमें खोजने की प्रवृत्ति जाग्रत करने की आवश्यकता है। एक बालक को वह पढ़ने दिया जाए, जिसे पढ़ने का उसका मन है, न कि वह, जिसे वह पसंद ही नहीं करता। ज्ञान निगलने के बजाय स्वाभाविक रूप से सीखने पर ज़ोर दिया जाए तो बालक का ज्ञान स्थायी होगा। एक यह भी विचार नकारने योग्य है कि विद्यालय और कक्षा ऐसा स्थान है, जहाँ बच्चे अपना अधिकांश ज्ञान प्राप्त करते हैं।

लेखक के विचार कि अभिव्यक्ति में भारतीय वर्तमान संदर्भ में बदलती हुई शिक्षा नीतियों ने छड़ी के प्रयोग पर अवश्य अंकुश लगाया है, परंतु बालक के प्रति स्नेह अभी शेष है। लेखक के अनुसार प्रत्येक वह स्थान, जहाँ बालक स्वयं को स्वतंत्र पाता है, वही सीखने के लिए उपयुक्त स्थान होना चाहिए, चाहे वह पेड़ की डाल हो या फ़िर खेल का मैदान।

पुस्तक को लिखने के लिए लेखक जितना प्रशंसा का पात्र है, उतना ही धन्यवाद का पात्र अनुवादक भी है। इस अनुवाद में भाषा का जैसा प्रवाह दिखता है वह वास्तव में अद्भुत है। एक सरल भाषा शैली का उपयोग कर राष्ट्रभाषा हिंदी में अनुवाद कर अनुवादक ने विचारों के सार्वभौमीकरण को प्रोत्साहित किया है। शायद अनुवादक यह बात जानता है कि प्रत्येक भारतीय के लिए आंग्ल भाषा सरल, सुलभ और प्रिय नहीं है, परंतु विचारों का आदान-प्रदान बिना अवरोध बेहद ज़रूरी भी है। इसके साथ-साथ प्रकाशक भी बधाई का पात्र है, चूँकि उसने बहुत ही सस्ती दर पर यह पुस्तक साधारण जनता तक उपलब्ध कराने का असाधारण कार्य किया है।

पतंजलि मिश्र
सहायक प्रोफ़ेसर (शिक्षा विद्यापीठ)
वर्धमान महावीर, खुला विश्वविद्यालय,
रावतभाटा रोड, कोटा, राजस्थान पिन. 324010

भूपेन्द्र सिंह
शोध छात्र (शिक्षा विद्यापीठ)
वर्धमान महावीर, खुला विश्वविद्यालय,
रावतभाटा रोड, कोटा, राजस्थान पिन. 324010